International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 22-01-2023, Accepted: 06-01-2023, Published: 24-01-2023
Volume 9, Issue 1, 2023, Page No. 48-51

कृष्ण भक्ति परम्परा व अष्टछाप कवि

सुनील कुमार पण्ड्या[1], मंजू चतुर्वेदी[2]
[1] हिंदी विभाग, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय, पैसिफिक अकादमी ऑफ हायर एजुकेशन एंड रिसर्च यूनिवर्सिटी, उदयपुर, राजस्थान, भारत
[2] प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय, पैसिफिक अकादमी ऑफ हायर एजुकेशन एंड रिसर्च यूनिवर्सिटी, उदयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश
कृष्ण भक्ति और अष्टछाप कवियों की परंपरा भारतीय संस्कृति में भक्ति और काव्य के समृद्ध विरासत का उदाहरण है। भक्ति की यात्रा, जैसा कि प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है, दक्षिण भारत में शुरू हुई और विभिन्न क्षेत्रों में फली–फूली, अंततः वृंदावन में अपने चरम पर पहुंची। चार प्रमुख वैष्णव आचार्यकृरामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य, और विष्णुस्वामीकृने कृष्ण भक्ति के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस परंपरा से प्रभावित प्रमुख कवियों में जयदेव थे, जिन्होंने ''गीत गोविंद'' की रचना की, और विद्यापति, जिनके कार्यों ने कई लोगों को प्रेरित किया, जिसमें चौतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य शामिल हैं। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग संप्रदाय की स्थापना ने उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अष्टछाप के कवि, वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विठ्ठलनाथ के शिष्य, अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओं के साथ इस परंपरा को समृद्ध किया। प्रमुख कवियों जैसे कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, और कृष्णदास ने अमर रचनाएं कीं जो कृष्ण की दिव्य लीला और भक्ति का उत्सव मनाती हैं। उनकी कविताएँ न केवल भक्ति के सिद्धांतों को मूर्त रूप देती हैं, बल्कि स्थानीय संस्कृति और भाषा में भी रची–बसी हैं, जिससे उनकी रचनाएं लोगों के दिलों में गहराई से प्रतिध्वनित होती हैं।

मूल शब्दः कृष्ण भक्ति, अष्टछाप कवि, पुष्टिमार्ग, वल्लभाचार्य, भक्तिपूर्ण कविता

सगुणोपासना तथा भक्ति का प्रचार और प्रसार दक्षिण भारत में ही हुआ है। भागवत् में इसका उल्लेख है। भक्ति ने नारदजी से कहा कि मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्नाटक में बढ़ी और फिर महाराष्ट्र में कुछ क्षीण होती हुई सर्वथा जरा–ग्रस्त हो गई। वहॉ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखंडियों ने मेरा अॅग–भॅग कर डाला। अब मैं वृन्दावन में आकर अत्यन्त प्रिय रूपवाली अति सुन्दरी नवयुवती सी हो गयी हूॅ।

नारदजी ने कहा, इस वृन्दावन का संयोग पाकर तू फिर नवीन तरूणी हो गई। इसलिए यह वृन्दावन धाम धन्य है कि जहॉ भक्ति सर्वत्र नृत्य करती फिरती है।

दक्षिण मे भक्ति–मार्ग के प्रचारक चार वैष्णव आचार्य हुए है। रामानुजाचार्य (स0 1074–1194 वि.) ने नारायण अथवा विष्णु की भक्ति का प्रचार किया। इन्ही के शिष्य रामानन्द ने, चौदहवी शताब्दी में श्री राम में नारायणत्व की प्रतिष्ठापना करके सभी के लिए भक्ति का मार्ग उन्मुक्त कर दिया। इसी परम्परा में तुलसीदास जी हुए।

निम्बार्काचार्य, बारहवी शताब्दी में हुए। राधाकृष्ण की भक्ति का श्रेय आप को ही दिया जाता है। यह भेदाभेद अथवा द्वेताद्वेत मतवाद के मानने वाले थे। इनका जन्म बिलारी जिले के निम्बापुर गॉव में हुआ था। निम्बार्क सम्प्रदाय को 'सनक सम्प्रदाय अथवा हंस सम्पदाय' भी कहते है।

तीसरे आचार्य हुए है मध्वाचार्य (स.1314 वि.) इन्होने शंकर के अद्वेतवाद का खण्डन करते हुए द्वेत–सिद्वान्त की स्थापना की। माध्व–मत में भेद स्वाभाविक तथा नित्य है। इन्होंने भी श्री कृष्ण को ब्रह्म माना है।

चौथे आचार्य हुए विष्णुस्वामी (सं 1377) इस नाम के तीन आचार्य हुए है। इसलिए विष्णुस्वामी की स्थिति का वास्तविक पता लगाना कठिन है। जो भी हो, इस सम्प्रदाय ने कृष्ण के साथ राधा की भक्ति का उपदेश दिया।[1]

जयदेव का समय विक्रम की तेरहवी शताब्दी का प्रारम्भ मानना चाहिए। जो कि निम्बार्क सम्प्रदाय से हुए जिन्होंने राधा और कृष्ण के विहार में गीत गोविन्द की रचना की।

जयदेव ने संस्कृत में गीत गोविन्द की रचना कर अपने भाषाधिकार और भाव प्रदर्शन की कुशलता का परिचय दिया। अपने अनुपम वाग्विलास से उन्होंने विद्यापति और सूरदास जैसे महान कवियों को प्रभावित अवश्य किया।

विद्यापति संस्कृत के महान पण्डित थे। प्रधानतः इन्होने अपनी रचनाऍ संस्कृत में ही की। संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने अवहट्ट और मैथिली में भी ग्रन्थ और पद लिखे। विद्यापति की मृत्यु स. 1532 (सन् 1475) के बाद माननी चाहिए। इस प्रकार विद्यापति ने 100 वर्ष से भी अधिक आयु पायी।[2]

चैतन्य महाप्रभु का जन्म फाल्गुनी पुर्णिमा तिथि, 18 फरवरी 1486 को हुआ। इन्होंने गौड़िय सम्प्रदाय की आधारशीला रखी। राजनीतिक अस्थिरता के दिनों में हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल दिया। वैष्णव लोग तो इन्हे श्री कृष्ण का राधा रानी के संयोग का अवतार मानते है। विष्णु के अवतार समझे जाते थे। विद्यापति के ललित और पवित्र भावनाओं से पूर्ण पदों को गाकर ये इस प्रकार भाव में निमग्न हो जाते थे कि इन्हें मूर्छा सी आ जाती थी। इसलिए बंगाल में विद्यापति का आश्चर्यजनक प्रचार हुआ ।

श्री वल्लभाचार्य का जन्म तेलगु देश में वैशाख कृष्ण एकादशी संवत 1535 वि. में हुआ था। उनके पिता विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वल्लभ और चैतन्य समकालीन थे।

प्रेम साधना के लिए वल्लभ ने लोक–मर्यादा और वेद–मर्यादा दोनों का त्याग उचित ठहराया। इस प्रेमलक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रर्वत्ति तभी होती है जब भगवान का अनुग्रह होता है, जिसे पोषण या पुष्टि कहते है। इसी से वल्लभाचार्य ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा। चैतन्य तथा वल्लभ–सम्प्रदाय के सिद्वान्तों में बहुत कुछ समानता है। दोनों में माधुर्य भाव–प्रधान भक्ति का विशेष स्थान है। दानों में राधा–कृष्ण की भक्ति को समान महत्व दिया गया हैं। उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति की सरस–सरिता प्रवाहित करने का श्रेय वल्लभाचार्य को ही है।[3]

श्री वल्लभाचार्य ने जिस पुष्टिमार्गीय भक्ति–सप्रंदाय की स्थापना की थी, उसका जिन हिन्दी भक्त कवियों द्वारा पल्लवन किया गया, उन्हें अष्टछाप के कवि कहा जाता है। यों तो पुष्टिमार्ग को

स्वीकार करने वाले अनेक भक्त उस समय विद्यमान थे, किन्तु जिन आठ भक्त कवियों पर गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने आर्शीवाद की छाप लगायी थी, वे 'अष्टसखा' या 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध है। इन आठ भक्त कवियों में चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे–कुम्भनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास। अन्य चार गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे– गोविन्दस्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। ये आठो भक्त श्री नाथ जी की नित्य लीला में अतरंग सखओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे, इसी मान्यता के आधार पर इन्हें 'अष्टसखा' कहते है।
'अष्टसखान की वार्ता' पर श्री हरिराय की 'भावप्रकाश' नामक टिप्पणी में आठों सखाओं के लीलात्मक स्वरूप, लीलासक्ति और अविकृत स्वभाव का पूर्ण विस्तार से उल्लेख है।[4]

1. कुम्भनदासः कृष्णोपासक कुंभनदास का जन्म 1468 ई. व निधन 583 ई.में हुआ था। जन्मजात कवि थे। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', भक्तमाल टीका, तथा हरिरामकृत 'भाव प्रकाश' में कुंभनदास का उल्लेख हुआ है। इनका अष्टछाप काव्य माधुर्य तथा वात्सल्य भक्ति, अष्टयाम सेवा भावना, ब्रजभाषिक पद रचना, शास्त्रीय रचना, लोक संस्कृति की सुगन्ध से सुवासित है। कृष्णभक्त अष्टछापीय कवियों में कुम्भनदास आयु में सबसे बड़े थे। वे वल्लभ के प्रथम शिष्य थे जिन्हें अष्टछाप के जहाज को चलाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इन्हें प्रख्यात अष्टछाप महान कवि चर्तुभुजदास के पूज्य पिता होने का गौरव प्राप्त हुआ है। प्रख्यात समालोचक डा. रामप्रसाद मिश्र ने इनके पदों की संख्या पांच सौ के उपर परिगणित किया है।[5]
कुंभनदास जी की विशेषता थी कि बहुत अच्छे गायक थे। ये किर्तन के पद बड़े सुरीले स्वर में गाते थे। अतः प्रातःकाल में श्री आचार्यजी ने श्री गोवर्धननाथजी को जगाकर कुंभनदास से कुछ भगवतलीला वर्णन करने को कहा, तब कुंभनदासजी ने श्री गोवर्धननाथजी को दंडवत करके पहले यह पद गाया–

सांझ के सांचे बोल तिहारे
रजनी अगत जगे नंदनंदन आये निपट सवारे।।1।।
आतुर भए नीलपर ओढ़े पीयरे बसन बिसारे।
'कुंभनदास प्रभु' गोवर्धन धर भले वचन प्रतिपारे।।2।।

यह किर्तन सुनते ही आचार्यजी ने कहा–''कुभनदास निकुंज लीला संबधी रस का अनुभव हुआ।'' इस प्रकार कुंभनदास बहुत पद बनाकर गाने लगे। इससे इनके पद चारों ओर प्रसिद्ध हुए।[6]

2. सूरदासः अनेक विद्वानों के मतानुसार सूरदास की जन्मतिथि वैशाख शुक्ला 5, मंगलवार, 1535 स. सिद्ध होती है।
सूरदास को गउघाट पर ही वल्लभाचार्य जी ने शरण में लिया। भगवत्लीला की प्रेरणा उन्हें वल्लभाचार्य जी से ही मिली। वे उनके गुरू,पिता,स्वामी सभी कुछ थे। सूरदास जी की 25 रचनाएँ मानी जाती है। सूर–सारावली, साहित्यलहरी, सूरसागर, भागवत भाषा, सूरसागर सार, सूर रामायण, भँवरगीत, सूर पचीसी आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ है। सूर–सारावली, साहित्यलहरी, सूर सागर, भागवत भाषा, सूरसागर सार, सूर रामायण, भंवरगीत, सूर पचीसी आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ है।[7]
महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास जी ने अपने को सर्वथा परिवर्तित कर लिया। उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त और सेवा–पथ पर चलते हुए अपने शेष जीवन को पुष्टिमार्गी सिद्धान्तों का प्रयोगात्मक रूप ही बना डाला। सम्भवतः इसीलिए 'पुष्टिमार्ग का जहाज' नाम से वे प्रसिद्ध हुए।[8]
सुक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर सूर का काव्य तथा उनका काव्य–शिल्प उनके पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों का परिणाम ही प्रतीत होता है। पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त है शुद्वाद्वेत।

'परंब्रह्म तुकृष्णो हि सच्चिदानन्दकं वृहत''
सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक–3

वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार परब्रह्म सच्चिदानन्द है, सदानन्द है और यह आनन्दस्वरूप ब्रह्म श्री कृष्ण ही है।
पुष्टिमार्गीय सेवा–पद्धति में दो प्रकार की लीलाएँ है– नैत्यिक और वर्षिक।

नित्य–सेवा–विधियॉ आठ है

मंगला, श्रंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती और शयन। वर्षोत्सव सेवा–विधि में संवत्सर, गणगौर, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, पवित्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दान, सॉझी, नवरात्रि, रास, अन्नकूट, गोपाष्टमी के वृतचर्या–पर्व, वसन्त डौल,ग्रीष्म–फूल मंडली, वर्षा हिडोंल, शरद रास, हेमन्त–देव प्रबोधिनी, जागरण,शिशिर–होली के ऋतु उत्सव, रक्षा बन्धन, दशहरा,दीवाली और होली के त्यौहार, मकर सक्रान्ति, ज्येष्ठाभिषेक के वैदिक पर्व और रामजयन्ति, नृसिंह जयन्ति तथा वामन जयन्ति मनाये जाते है।

जसोदा हरि पालने झुलावे।
हलरावे दुलराई मल्हावै, जोई सोइ कछु गावै।।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि हीं आवै, तोको कान्ह बुलावै।।
कबहुँ पलक हरि मूंद लेत है, कबहुँ अधर फरकावे।
सोवत जान मौन ह्वे के रहि, करि–करि सैन बतावै।।

सूरसागर, दशम स्कन्ध पद 43

पालने में कन्हैया को झुलाती हुई और लोरी गाती हुई यशोदा पाठक के समक्ष दिखाई पड़ती है। लोरी की पंक्तियॉ मूक–चित्र को बोलता हुआ बना देती है। कवि ने एक संश्लिष्ट और मनोरम चित्र प्रस्तुत कर दिया है।
सूरदास जी ने कृष्ण भक्ति परम्परा में इन सभी नित्य सेवा व उत्सवों पर अपने पदों की रचना की है। इन समस्त सेवा–विधि के अनुरूप पद–रचना किये जाने के कारण सूरदास की रचना सूरसागर के श्री कृष्ण–लीलाओं का विस्तार मूल भागवत की लीलाओं से भी अधिक हो गया।[9]

3. परमानंददासः इनका जन्म मार्ग शीर्ष शुक्ल 7 सोमवार संवत 1550 को कन्नोज में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। यह बचपन से ही काव्य और संगीत में बहुत निपुण थे। युवावस्था ही में यह कवि और कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे और स्वामी कहलाये थे। सं.1576 में यह संक्रान्ति स्नान के लिये प्रयाग आये। उन दिनों महाप्रभु वल्लभाचार्य यमुना पार अड़ैल में थे। सं. 1577 को ज्येष्ठ शुक्ल 12 में वे अड़ैल से ब्रज आए। गोवर्धन आने पर वे सुरभि कुण्ड पर श्याम तमाल वृक्ष के नीचे रहा करते थे। सं. 1641 भाद्रपद कृष्ण 1 को. 91 वर्ष की वय में इन्होंने सुरभि कुंड पर ही नश्वर शरीर छोड़ा।
परमानंदस्वामी से बने 'परमानंददास के ग्रंथों की संख्या डा. प्रभुदयाल मीतल ने 6 मानी है एवं डॉ. सत्येन्द्र ने ग्रंथों की संख्या 7 मानी है। दान लीला, उद्धवलीला, ध्रुव चरित्र, संस्कृत रत्नमाला, दधि लीला, परमानन्द जी कौ पद तथा परमानन्द सागर। सूर के सूरसागर की भॉति इनका पद संग्रह भी 'परमानन्द सागर' कहलाया।[10]
श्री वल्लभाचार्य से भेंट होने पर परमानन्द दास स्वामी ने निम्न विरह के पद का गायन किया–

ब्रज के विरही लोग बिचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढे अति दुर्बल तन हारे।
मात जसोदा पंथ निहारति निरखति सोझ सकारे।
तो कोउ 'कान्ह' 'कान्ह' कहि टेरत अंखियन बहत पनारे।
ये मथुरा काजर की रेखा जाई निकसत सोई कारे।
परमानंदस्वामी बिन ऐसे जैसे नंद बिनु तारे।।[10]

किसी भी रचना के काव्य–सौष्ठव का मूल्यांकन भावपक्ष व कलापक्ष के अर्न्तगत किया जा सकता है। इन दोनों पक्षों को समालोचकों ने कथ्य व शिल्प, वस्तु व कला, संवेदना व शिल्प, अर्न्तदृष्टि व शिल्प, अनुभूति व अभिव्यक्ति आदि रूपों में भी निरूपित किया है। कविवर परमानंददास ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, उर्वर कल्पना व गहन अनुभूति से जिन भाव–चित्रों की सृष्टि की है, उनका रसास्वादन करके पाठक व श्रोता झूम उठता है। डॉ. दीनदयाल गुप्त के शब्दों में– ''परमानंददास ने बाल–भाव और वात्सल्य में सने मात्–हृदय के प्रेम–भावों, जैसे बालक का किलक–किलक कर खेलना, बालक का हठ, बालकों की शिकायतें, माता का लाड़ लड़ाना, उनका दुलार, उसके हृदय की उमंगें और कामनाएँ आदि के बहुत सुन्दर चित्र अंकित किए है। माता यशोदा कभी बालक कृष्ण के सॉवरे रूप पर मोहित होकर न्यौछावर होना चाहती है, तो कभी कुदृष्टि लगने से 'राई–लोन' उतारती है। कभी वह विशम्भर से प्रार्थना करती है। इन्ही भावों की प्रस्तुति उन्होंने अपने काव्य में निम्न पद में की है–

यह तन कमल नैन पर वारौ, सामलिया मोहि भावे रे।
चरन कमल की रेनु जसोदा लेले सीस चढ़ावे रे।।
ने उछंग मुख निरखन लागी राई लौन उतारे रे।
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै ऑचल झारे रे।।
तू मेरौ बालक जदु नंदन तोहि बिसभंर राखे रे।
'परमानंददास' चिर जीवौ बार बार यों भाखे रे।।[11]

4. कृष्णदासः इनका जन्म गुजरात राज्य के चिलोतरा ग्राम में हुआ था। सं. 1566 वि. के लगभग मथुरा में वल्लभाचार्य ने इन्हें दीक्षा दी। अपनी प्रशासनिक रूचि के कारण ही ये श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी पद पर विभूषित हुए थे। कहते है कि वल्लभाचार्यजी की मृत्यु के बाद उनके पौत्र पुरषोत्तम को गद्दी पर बिठाने के लिए इन्होंने विट्ठलनाथजी से विवाद भी कर लिया था। मन्दिर के वैभव और ऐश्वर्य की वूद्धि में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। इनका गोलोकवास लगभग संवत 1665 वि. में हुआ था। कहते है अन्त समय में उन्होंने यह पद गाया था–

मो मन गिरिधर–छबि पै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै, चिबुक चारू गढ़ि ठटक्यो।।
सजल स्याम घन बरन लीन है, फिरी चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो।।[12]

5. नंददासः अनुश्रुति के अनुसार ये गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई थे। इनका जन्म सं. 1590 वि.के लगभग हुआ था तथा निधन 1939 वि.में हुई। तुलसीदास और नन्ददास दोनो ने प्रारम्भ में नृसिंह पण्डित से शिक्षा ग्रहण की। पंडित नृंसिह रामोपासक थे। अतः प्रारम्भ में इनकी रूचि रामभक्ति की ओर थी। किन्तु एक दिन द्वारिका जाते हुए मार्ग में इनकी मुलाकात विट्ठलनाथ से हुई और वहीं इन्होंने पुष्टिमार्ग की दीक्षा ली। इन्होंने कुल 15 ग्रंथों की रचना की, जिसमें अनेकार्थमंजरी, मानसमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम–बारहखड़ी, श्याम–सगाई, सुदामा–चरित्र, रूक्मिणी–मंगल, भॅवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा, गोवर्धनलीला, पदावली प्रमुख है।
इन्होंने अपने शुद्वाद्वेत–सम्बन्धी विचारों को अनेकार्थमंजरी में संकलित किया है। किंतु लौकिक–पारलौकिक प्रेम एवं भाषा–सौष्ठवकी दृष्टि से इनकी श्रेष्ठ कृति रासपंचाध्यायी है। रासपंचाध्यायी भागवत में दशम स्कन्ध के 29 वें–से 33 वे अध्यायों का सम्मिलीत नाम है। जो मुलतः रोला छन्द में है। रासपंचाध्यायी में 'मुरली–वर्णन' द्रष्टव्य है–

तव लीनी कर–कमल जोग माया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुर ली।।
जाको धुनि तें अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जनति मोहिनी सब सुख सागर।।
नगर नवल किसोर कान्ह कल–गान कियो अस।
वाम विलोचन बालन को मन हरन होई जस।।[13]

6. गोविन्दस्वामीः इनका जन्म सं. 1562 वि. में भरतपुर राज्य में व्रज के निकट ऑतरी गॉव में हुआ था। कहते है तानसेन को पद–गायन की शिक्षा गोविन्दस्वामी ने ही दी थी। तानसेन भी इनके गायन सुनने को लालायित रहते थे। इनकी कविताऍ मुख्यतः राधा–कृष्णकी श्रंगारिक लीलाओं से सम्बन्धित है। कुछ पद बाललीला–विषयक भी है। इनके लगभग 600 पदों का संकलन 'गोविन्दस्वामी के पद' शीर्षक से प्रकाशित है।
राधा–कृष्ण की होली–क्रीड़ा से सम्बन्धित इनका एक पद द्रष्टव्य है–

विराजत स्याम मनोहर प्यारौ।।
प्रभु तिहूँ लोक उजियारो।।
सरस बसन्त समें बन सोभा श्री व्रजराज विराजें।।
सुर नर मुनि सब कौतुक भूलें देखि मदन कुल लाजै।।
रंग सुरंग कुसुम नाना रॅग सोभा कहत न आवे।।
नवल किशोर और नवल किशोरी राग संगिनी गावें।।
चोवा चंदन अगर कुमकुमा उड़त गुलाल अबीर।।

गोविन्ददास स्वरचित पदों को श्रीनाथजी के सम्मुख गाया करते थे। उनकी भक्ति सख्य–भाव की थी। वल्लभ सम्प्रदाय में उन्हें भगवान् के सखा श्रीदामा का अवतार माना जाता है। श्रीनाथजी साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ खेला करते थे, बाल लिलाऍ किया करते थे।[14]

7. छीतस्वामीः इनका जन्म सं. 1572 ई. के लगभग मथुरा में हुआ था। ये मथुरा के चौबे पंडा, राजा बीरबल के पुरोहित एवं शैव मतावलम्बी थे। साथ ही दुष्ट प्रकृति के भी थे। मथुरा के प्रसिद्ध गुंडों में वे एक थे और छीतु चौबे के नाम से कुख्यात थे। सम्वत 1592 में इन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथजी से वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा ली। दीक्षा लेने के अनन्तर यह गोवर्धन के पास पूँछरी नामक स्थान पर एक श्याम तमाल के नीचे रहने लगे। छीतस्वामी का कोई ग्रंथ नही है। इनके 201 फुटकर पद है जो 2012 में विद्या विभाग, कांकरोली से सुसम्पादित होकर प्रकाशित हुए है। भक्तमाल में छीतस्वामी का उल्लेख भगवदगुणगान करने वाले 22 भक्तों की सूची में छपपय 146 में हुआ है।[15]
एक बार राजा बीरबल गोकुल में जन्माष्टमी के दर्शन करने वेष बदल कर आये। तब श्री गुंसाईजी श्री नवनीतप्रियजी पालना झुला रहे थे तब छीतस्वामी ने यह पद गाये–

प्रियनवनीत पालने झुले श्रीविट्ठलनाथ झुलावेहो।
कबहूंक आप संग मिल झूले कबहूंक उतर झुलावेहो।।
कबहूंक सुरंग खिलौना लेलै नानाभांति खिलावे हो।
चकई फिरकली लेविंगीटू झुण्झुणहात बजावे हो।।
भोजन करत थाल एक झारी दोउ मिल खाय ख्वावें हो।
गुप्त महारास प्रकट जनावे प्रीति नई उपजावें हो।।
धन्यन्यभाग्यदास निजजनके जिनयह दर्शन पाएहो।
छीतस्वामी श्रीगिरिधरन श्री विट्ठल निगम एककर गाहेहो।।[16]

8. चतुर्भुजदासः–कुम्भनदासजी के सात पुत्रों में चतुर्भुजदास जी सबसे छोटे थे। परम्परागत खेती–बाड़ी से अलग–अलग संगीत–काव्य और भजन–कीर्तन की ओर ही इनकी रूचि थी। इनको गानविद्या स्वयं इनके पिता कुम्भनदासजी ने दी थी। इनके

पदों में श्रंगार की अद्‌भुत छटा है, जो इनके द्वारा रचित ग्रन्थों चतुर्भुज–कीर्तन, कीर्तनवाली और दानलीला में संगृहीत है। राधा–कृष्ण के झूला झूलने से सम्बन्धित इनका एक पद द्रष्टव्य है–

हिंडोरे माई झूलत गिरिवरधारी !
बाम भाग वृषभानुनंदिनी, पहैरे कुसुँभी सारी।।
ब्रज युवती चहँ दिसि तैं ठाडी, निरखत तन मन वारी।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सँग बाढ़यौ रँग अतिभागी।।[17]

डपसंहार

श्री वल्लभाचार्य ने ब्रजमण्डल में जिस कृष्ण भक्ति को प्रतिष्ठित किया, उसका दार्शनिक आधार शुद्वाद्वेत दर्शन है। साधना और व्यवहार–क्षैत्र में शुद्वाद्वेत दर्शन के साथ जिस भक्ति को स्थान दिया गया, उसका आधार उन्होंने 'पुष्टिमार्ग' को बनाया। भगवद् अनुग्रह या कृपा को 'पुष्टि' कहा जाता है। पुष्टिमार्ग भगवान के अनुग्रह का मार्ग है। पुष्टिमार्गीय भक्ति रागानुराग भक्ति है। इस भक्ति में किसी प्रकार के साधन या कर्मकाण्ड की अपेक्षा नहीं होती। मोक्ष की दृष्टि से भी पुष्टिमार्ग को अधिक सुकर बताया गया है। पुष्टिमार्गीय कृष्णभक्त अष्टछाप हिन्दी कवियों ने इसी आधार को ग्रहण कर कृष्ण के रूप–सौन्दर्य को श्रंगारमंडित किया और उस भगवान के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए काव्य रचना की। कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया है। ये आठों भक्त श्रीनाथ जी की नित्य लीला में अंतरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते है, इसी कारण इन्हें अष्टसखा कहते है।

कृष्ण लीलाओं के व्यापक प्रचार–प्रसार तथा सृजित साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि सम्पूर्ण भारत में श्री कृष्ण की रूप माधुरी प्रचारित हो गई है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. श्याम सुन्दर लाल दीक्षितः कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत, पृष्ठ 213, 214
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहासः श्री रामकुमार वर्मा, 31 मार्च 1938, पृष्ठ 582
3. के. भास्करन नायरः हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य, पृष्ठ 35
4. डॉ.नगेन्द्रःहिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 187,188
5. भगवती प्रसाद देवपुराःकमनीय कवि और कलित कीर्तनकार श्री कुम्भनदास, डॉ. चक्रधर नलिनः कुम्भनदास का कृष्णोपासीय व्यक्तित्व, पृष्ठ 55
6. सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुराःकमनीय कवि और कलित कीर्तनकार श्री कुम्भनदास, डॉ. कमलकिशोर गुप्ताः कुम्भनदासः महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के प्रथम अष्टछाप सखा शिष्य, पृष्ठ 32
7. डॉ. श्यामसुन्दर लाल दीक्षितः कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत, पृष्ठ 256
8. मनमोहन गौतमः सूर की काव्य–कला, सन् 1958, पृष्ठ 39
9. मनमोहन गौतमः सूर की काव्य–कला, सन् 1958, पृष्ठ 42
10. सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुराः अष्टछापीय भक्ति, काव्य और संगीत के रसस्रोत महाकवि परमानन्ददास, डॉ.रामप्रकाश कुलश्रेष्ठः हिन्दी साहित्य के इतिहास में श्री परमानन्ददास, पृष्ठ 132
11. सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुराः अष्टछापीय भक्ति, काव्य और संगीत के रसस्रोत महाकवि परमानन्ददास, डा. रामपत यादवः अष्टछाप के कवि परमानंददास का काव्य–सौष्ठव, पृष्ठ 140
12. श्री आनन्द स्वरूप शुक्लाः महाप्रभु वल्लभाचार्य और अष्टछाप कवि, कल्याण, श्री राधामाधव अंक, पृष्ठ 448
13. श्री आनन्द स्वरूप शुक्लाः महाप्रभु वल्लभाचार्य और अष्टछाप कवि, कल्याण, श्री राधामाधव अंक, पृष्ठ 448
14. श्री आनन्द स्वरूप शुक्लाः महाप्रभु वल्लभाचार्य और अष्टछाप कवि, कल्याण, श्री राधामाधव अंक, पृष्ठ 449
15. सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुराः अष्टछाप के कोकिल कंठी कवि और कीर्तनकार छीतस्वामी, डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठः छीतस्वामी का काव्य वैभव पृष्ठ सं. 74
16. सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुराः अष्टछाप के कोकिल कंठी कवि और कीर्तनकार छीतस्वामी– दो सौ बावन वैष्णवन वार्ता, पृष्ठ 146
17. श्री आनन्द स्वरूप शुक्लाः महाप्रभु वल्लभाचार्य और अष्टछाप कवि, कल्याण, श्री राधामाधव अंक, पृष्ठ 449